आचार्य वीरसेन

जीवन-परिचय : आचार्य वीरसेन सिद्धान्त के पारंगत विद्वान तो थे ही, साथ ही गणित, न्याय, ज्योतिष और व्याकरण आदि विषयों का भी पाण्डित्य उन्हें प्राप्त था। इनका बुद्धिवैभव अत्यन्त अगाध है।

आचार्य जिनसेन ने उन्हें वादिप्रमुख, लोकप्रसिद्ध वाग्मी और कवि के अतिरिक्त श्रुतकेवली के तुल्य बतलाया है। इन्होंने लिखा है कि उनकी सर्वार्थगामिनी प्रज्ञा बुद्धि को देखकर बुद्धिमानों को सर्वज्ञ की सत्ता में कोई शंका नहीं रहती थी। उनकी बुद्धिमत्ता को देखकर ही आचार्य जिनसेन ने अपने आदिपुराण एवं धवला प्रशस्ति में इनको कविवृन्दारक कहकर स्तुति की है। उन्होंने लिखा है कि—

वे अत्यन्त प्रसिद्ध वीरसेन भट्टारक हमें पवित्र करें, जिनकी आत्मा स्वयं पवित्र है, जो कवियों में श्रेष्ठ हैं, जो लोकव्यवहार और काव्यस्वरूप के महान ज्ञाता हैं तथा जिनकी वाणी के समक्ष औरों की बात ही क्या, स्वयं सुर-गुरु-वृहस्पति की वाणी भी सीमित जान पड़ती है। षट्खण्डागम सिद्धान्त ग्रन्थ के ऊपर टीका रचनेवाले मेरे गुरु वीरसेन भट्टारक के कोमल चरण-कमल सर्वदा मेरे मनरूपी सरोवर में विद्यमान रहें।

अत: हम कह सकते हैं कि वीरसेनाचार्य कवि और वाग्मी तो थे ही, साथ ही सिद्धान्तग्रन्थों के टीकाकार के रूप में भी प्रसिद्ध थे।

आचार्य वीरसेन चन्द्रसेन के प्रशिष्य और आर्यनन्दी के शिष्य थे। उनके विद्या गुरु एलाचार्य और दीक्षा गुरु आर्यनन्दी थे।

आचार्य वीरसेन का स्थिति-काल विवादास्पद नहीं है, क्योंकि उनके शिष्य जिनसेन ने उनकी अपूर्ण जयधवलाटीका को शक संवत् 759 की फाल्गुन शुक्ल दशमी को पूर्ण किया है, अत: इस तिथि के पूर्व ही आचार्य वीरसेन का समय होना चाहिए और उनकी धवला टीका की समाप्ति इससे बहुत पहले होनी चाहिए। अत: आचार्य वीरसेन का समय ई. सन् की 9वीं शताब्दी (ई. सन् 816) है।

रचना-परिचय : आचार्य वीरसेन की दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—

1. **धवला टीका :** यह एक रचना है। बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत और संस्कृत मिश्रित भाषा में मणि-प्रवाल शैली में, यह षट्खण्डागम के आदि के पाँच खण्डों की सबसे महत्त्वपूर्ण टीका है। टीका होने पर भी यह एक स्वतन्त्र जैसा सिद्धान्त ग्रन्थ है। यह टीका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस टीका में निमित्त, ज्योतिष, न्यायशास्त्र, दार्शनिक और गणित आदि विषयों के साथ षट्खण्डागम के रहस्य और वस्तुतत्त्व का मर्म उद्घाटित किया गया है। साथ ही प्राचीन ग्रन्थों के उद्धरण भी टीका में दिए गये हैं, इससे आचार्य वीरसेन के श्रुत विद्वान होने के प्रमाण मिलते हैं।

आचार्य ने अपनी यह धवला टीका विक्रमांक शक 738 कार्तिक शुक्ल 13 सन् 816 बुधवार के दिन प्रातः काल में समाप्त की थी। उस समय राजा अमोघवर्ष प्रथम का शासन काल था।

इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार से ज्ञात होता है कि बप्पदेव की टीका को देखकर वीरसेनाचार्य को धवला टीका लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई। इस टीका के स्वाध्याय से वीरसेन ने अनुभव किया कि सिद्धान्त के अनेक विषयों का वर्णन छूट गया है, तथा अनेक स्थलों पर विस्तृत सिद्धान्त सम्बन्धी व्याख्याएँ भी अपेक्षित हैं। अतएव इन्होंने एक नयी विवृति लिखने की परम आवश्यकता अनुभव की। फलतः बप्पदेव की टीका से प्रेरणा प्राप्त कर 'धवला' एवं 'जयधवला' नामक टीकाएँ लिखीं।

2. **जयधवला टीका :** आचार्य वीरसेन की दूसरी रचना कषाय-प्राभृत के प्रथम चार अध्यायों पर आधारित जयधवला टीका थी। आचार्य इसके केवल बीस हजार श्लोक प्रमाण ही लिख सके थे कि उनका स्वर्गवास हो गया। इस ग्रन्थ का अवशिष्ट भाग उनके शिष्य जिनसेन स्वामी ने पूरा किया था।

आचार्य वीरसेन स्वामी साक्षात् केवली के समान समस्त विद्याओं के पारगामी विद्वान थे। उनकी भारती (दिव्यवाणी) भरतचक्रवर्ती आज्ञा के समान षट्खण्ड में फैली थी। अर्थात् जिस प्रकार षट्खण्ड पृथ्वी पर भरत चक्रवर्ती की आज्ञा का निर्विवादरूप से पालन किया जाता था, उसी प्रकार आचार्य वीरसेन की वाणी भी छह खण्डरूप षट्खण्डागम नामक परमागम में निर्विवादरूप से मान्य है। जिसका खण्डन कोई नहीं कर सकता है।

यह आश्चर्य की बात है कि एक व्यक्ति आगम का इतना बड़ा ज्ञानी हो सकता है।